The Academic
International Journal of Multidisciplinary Research

An Online Peer Reviewed / Refereed Journal
Volume 2 | Issue 10 | October 2024
ISSN: 2583-973X (Online)
Website: www.theacademic.in

ग़रीब कौन....?

पूजा कुमारी
स्नातकोत्तर (हिंदी प्रतिष्ठा), हिंदी विभाग, चतरा महाविद्यालय(वि.भा.वि - हजारीबाग)
चतरा, झारखंड(भारत)825401
pujasahni31@gmail.com
DOI: 10.5281/zenodo.14104066

जब भी हमारे सामने अप्रत्यक्ष रूप से ' ग़रीब ' शब्द का ज़िक्र होता है तो हमारे अंतर्मन में एक मूर्त छवि उभर जाती है। उस मूर्त छवि में महिला - पुरुष अथवा बालक - बालिका की स्थिति हो सकती है जिसके फटे - पुराने कपड़े, शरीर की अस्थियों का बाहर की ओर उभार,शारीरिक गंदगी से युक्त चेहरे पर दया की अभिलाषा और मुख से रोटी की चाह आदि दृश्य परिलक्षित होते हैं।

हमारे देश में ग़रीबी की परिभाषा जीवन के बुनियादी आवश्यकताओं के अभाव के रूप में दी जाती हैं। " ग़रीबी या निर्धनता से आशय उस स्थिति से है जिससे समाज का एक भाग अपने जीवन की बुनियादी आवश्यकताओं को पूरा करने में असमर्थ रहता है **"1** वहीं दूसरी ओर वैश्विक स्तर पर वैश्विक ग़रीबी को केवल आर्थिक संदर्भ में मापा जाता हैं।

प्रश्न यहां यह है कि क्या ग़रीब लोग ऐसे ही होते है ? क्या केवल भौतिक अभाव और आर्थिक तंगी ही ग़रीबी के दायरे में आते है ?

'ग़रीब' शब्द के मूल अर्थ को समझा जाएं तो यह मूल रूप से अरबी भाषा का शब्द है। जिसका मूल धातु **'ग़ र ब'** है जो अलगाव या दूरी का द्योतक है। इसके अतिरिक्त ग़रीब का अर्थ विदेशी, अनजान अथवा विलक्षण भी माना जाता हैं।

उपर्युक्त अर्थों के आशय के बाद तो 'ग़रीब' की मूर्त छवि कहीं अदृश्य हो जाती है क्योंकि ' ग़रीब' रूपी निर्धन, दयनीय लोग अलगाव युक्त नहीं वरन् मिलनसार होते हैं। वे विदेशी भी नहीं होते क्योंकि अभावों में भी अपनी मानवीय परंपरा व धर्म को नहीं भूलते , वे अनजान भी नहीं होते क्योंकि जीवन की प्रत्येक दुर्लभ चुनौतियों से अनुभव ले चुके होते हैं और अंत में रही बात विलक्षण होने की तो वे कोई विशेष लक्षण वाले भी नहीं होते अपितु उनकी भावनाएं व क्रियाएं साधारण रूप में मनुष्य के उच्च धर्म का बड़ी ही सहजता से अनुपालन करते हैं।

वर्तमान में हमारा समाज चार वर्णों व इसके अनेकों उपवर्णों में नहीं अपितु केवल दो वर्ग ग़रीब अथवा निर्धन और अमीर अथवा धनी के रूप में विभाजित हैं। चूंकि उपर्युक्त व्याख्यान से यह तो स्पष्ट हो गया कि निर्धन ग़रीब नहीं होते परंतु धनी ग़रीब कैसे होते हैं, समझना शेष हैं।

धनी ग़रीब कैसे है, समझने के लिए पूर्व की ही तरकीब अपनाते है। धनी वर्ग जो बिल्कुल अभावमुक्त है , जिनका केवल भौतिक कल्याण से संबंध है और इसलिए वे प्रेम , ममता , श्रद्धा व दया जैसे मूल्यों को भूलकर अंततः अलगाव का वरण कर लेते है । इसप्रकार समाज से स्वयं की दूरी बनाकर वे स्वयं को सर्वश्रेष्ठ व विशेष ' सम्मान योग्य ' समझ बैठते हैं। जबकि उन्हें यह ज्ञात होना चाहिए कि " दौलत से आदमी को जो सम्मान मिलता है , वह उसका नहीं उसकी दौलत का सम्मान है।"**2** अर्थात् दौलत के न रहने पर उनका सम्मान भी उनसे दूरी बना लेता है ।

आगे बढ़ते हुए पाते हैं कि धनी ' विदेशी' भी हो जाते है क्योंकि तनिक भौतिक कल्याण से वे अपने व्यक्तिगत उत्थान के लिए आधुनिकीकरण रूपी सरोवर में पश्चिमी संस्कृति युक्त शीतल जल से स्नान करते हैं । साथ ही देशी संस्कृतियों व परंपराओं को प्राचीन व तुच्छ नाला रूपी समझ बैठते हैं। इसीप्रकार धनी ' अनजान ' भी होते है क्योंकि सोने(धातु) के इस चकाचौंध में सोंधी मिट्टी के गुण को भूल जाते हैं। अतः मानवीय मूल्यों के प्रकाश से विरक्त होकर अंधकार रूपी अधर्म के कूप में स्वयं को गिरा लेते हैं और जीवन की वास्तविकता से अनजान हो जाते है।

कहते है "लिखते तो वह लोग है, जिनके अंदर कुछ दर्द है, अनुराग है, लगन है, विचार है । जिन्होंने धन और भोग - विलास को जीवन का लक्ष्य बना लिया, वह क्या लिखेंगे ?3

अंततः वे स्वयं को ' विलक्षण ' भी मानते है। उनके विवेक से इसका तात्पर्य कदाचित उत्कृष्ट विशेष लक्षण से हो परंतु यहां उनके विलक्षण नकारात्मक है जो इस लौकिक धरा व मर्यादित समाज के लिए विष के समान है । शोषितों के रक्त - स्वेद से अपनी विलासिता खरीदने वाले को जब कामगारों को उनका श्रम मूल्य देना होता है तो उस क्षण वही विलक्षण मनुष्य स्वयं को शरीफ़ समझकर श्रमिकों से ठगाने का भय महसूस करते हैं और उन्हें फटकार लगाकर उनके श्रम के न्यूनतम मूल्य से भी कम मूल्य देकर चले जाते हैं। शायद इसलिए मोचीराम आहत होकर कहे थे -

" गरज यह है कि घंटे भर खटवाता है

मगर नामा देते वक्त

साफ़ नट जाता है

शरीफों को लूटते हो, वह गुर्राता है

और कुछ सिक्के फेंककर

आगे बढ़ जाता है ।"4

हम अक्सर अपने आसपास देखते है कि एक सामान्य - सा मनुष्य जिसके जीवन में कई अभाव हैं । वे प्रेम, सदाचार , दया ,व्यवहार कुशल , संतुष्टि व अन्य मानवीय गुणों से पूर्ण होते हैं। समाज व व्यक्ति विशेष के विकास और विलासिता में मौलिक रूप से एक श्रमिक रूपी सामान्य मनुष्य का ही हाथ होता है जिसकी परिकल्पना भी हमारा धनी वर्ग कर नहीं सकते हैं। हां ! वे एक काम ज़रूर करते है कि अपनी लापरवाहियों व असफलताओं के लिए कामगारों को अपशगुन मानकर उन्हें कोसते हैं। जिसके फलस्वरूप हमारे निर्दोष शोषितों की दुर्गति होती है । मुझे तो सोचकर ही आश्चर्य होता हैं कि क्या धनी वर्ग के पास विवेक नहीं होता या सत्य समझने की क्षमता ही नहीं होती है ?श्रमिकों की दुर्गति करने

वालों को यह आवश्यक रूप से समझना चाहिए कि ये वही है जिन्होंने समाज को गति प्रदान की । इनके श्रम ने ही आज समस्त विश्व को अविकसित से अल्पविकसित , अल्पविकसित से विकासशील तथा विकासशील से विकसित तक का सफ़र तय कराया है। परंतु विडंबना यह है कि पृथ्वी का प्रत्येक परिवर्तन प्राकृतिक हो या मानवीय अपना नकारात्मक प्रभाव सबसे पहले इन्हीं पर डालते हैं। इसपर मुझे 'अज्ञेय 'जी की एक पंक्ति याद आती है -

"पहाड़ नहीं कांपता

न पेड़ न तराई,

कांपती है ढाल पर के घर से

नीचे झील पर झरी

दीए की लौ की

नन्ही परछाई । "5

निःसंदेह अब परिस्थितियां बदल रही है ! जब एक साधारण मनुष्य में इतनी क्षमता हो तो अपने स्वाभिमान के लिए प्रगतिशील विचारों को आत्मसात् कर स्वयं को साधारण, शोषित धर्म से 'सम्मान योग्य 'वर्ग स्वीकार करने में तनिक भी अचरज नहीं होना चाहिए। क्योंकि समस्त ब्रह्माण्ड में जितना सम्मान व अधिकार उपभोग वर्ग (अमीर वर्ग) को है उससे कहीं अधिक सम्मान व अधिकार सृजक वर्ग (श्रमिक वर्ग) को होनी चाहिए। भले ही इन्हें विलासिता और आर्थिक समृद्धि न मिलें परंतु हमारे जीवन के वे सभी मौलिक सम्मान जो इनके त्याग व कर्म के लिए अपेक्षित हो उन्हें अवश्य मिलना चाहिए। ताकि समाज में विलासिता जैसी क्षणिक संसाधनों के आधार पर मानवीय मूल्यों का जो विभाजन होता है, उन्हें विराम दिया जाएं । समाज के श्रमिक रूपी साधारण मनुष्य स्वयं को प्रकृति प्रदत अनमोल , उपयोगी और विशेष रचना के रूप में स्वीकारें । इन्हीं विचारों से मुझे नागार्जुन की कुछ पंक्तियां याद आती है -

"नए गगन में नया सूर्य जो चमक रहा है..

यह विशाल भूखंड आज जो दमक रहा है..

मेरी भी आभा है इसमें "6

तो चलिए अब 'धनी बनाम निर्धन 'को समझते है जिसके लिए मेरी स्वरचित पंक्तियां कुछ इस प्रकार है :**धनी; दुनियां मुझसे राज़ है करती**

धन संपदा से साज है करती

होता सदैव आग़ाज़ हमारा

हम हीं पाखी , परवाज़ हमारा

निर्धन: तुम जीवन के सुख से रहित

छल, कपट लिए सहित

न होता नीति का भान

कैसा है तेरा अभिमान ?

धनी; भूख और रोटी की कहानी

जुड़ी है इनसे तेरी जिंदगानी

तू धरा है, हम आसमां

तुझमें अभाव है , हम बेशुमार।

निर्धन; हां ! अभाव हमारा स्वभाव है..

जिससे क्रंदित हमारा मनभाव है..

हमारी पूर्ति का कौन हवाला है.. ?

हमारी संपन्नता प्रेम का निवाला है।

धनी; तू ज़ख्म है , हम मरहम

तू करती विलाप , हम सरगम

ग़रीबी के दामन में दाने होते चार..

हमारे बिछावन में , गड्डियों की भरमार ।

निर्धन; तुम्हारे महलों के कोनों में रोती मां की माया है..

हमारे झोपड़ी के कण - कण में मां की प्रेम की छाया है ..

सुनहले तश्तरियों की पूड़ी - कचौरियां लगती बेस्वाद है..

हमारे पत्तलों पर जली रोटियां ,

मिटाती हृदय और पेट का अवसाद है ।

धनी; हम में मान, हमसे शान

हम से शुरू जग में अभिमान ..

हमारी प्रतिष्ठा में तुम्हारी निष्ठा ..

हमसे ही संभव जग की श्रेष्ठता।

निर्धन; सत्य, निष्ठा के हम पुजारी

प्राण , प्रतिष्ठा हमें भी प्यारी

ग़रीबी के निशान, हमारे

चेहरे कपड़े पर भी मेहरबान

जिसके पंखों को तोड़कर ,

करते तुम सैर पूरा आसमान

धनी; प्रेम ,प्रयास का भी पासा हमारा..

द्वेष, रास का झांसा हमारा

दुःख, दरिद्रता तुम्हारी मीत..

विलासी - अय्याशी हमारी रीत।

निर्धन; प्रेम के कण से बना है ये जग..

प्रेम के वैभव से सना है ये जग..

ओ! विलासिता के खरीदार..

कभी चलो हमारे बाजार..

खरीद न सकोगे कभी सोनें के मोहरों से ..

सुख-शांति, अमन,चैन को क़ीमत की दोहरों से ।

निष्कर्ष ; वर्तमान की पीढ़ी आधुनिक समाज में विकास की अवस्था प्राप्त कर के भौतिक सुख की ओर अग्रसित हो रही हैं। वहीं दूसरी ओर जीवन के परम सत्य से स्वयं को विच्छिन् कर रही है । भौतिक विलास के क्षणिक सुख के लिए जीवन के अटल सत्य व विशुद्ध उद्देश्य से वे इस प्रकार बेसुध हो रहे है कि नैतिक मूल्यों व मानवीय धर्म को अव्यावहारिक समझ बैठे हैं।आज आर्थिक समृद्धि जैसे क्षणिक संसाधन के समक्ष लोग जीवन के प्रत्येक नैतिक मूल्यों , क्षमताओं और संभावनाओं को सूक्ष्म मानते हैं। प्रश्न यह है कि.. क्या हमारा समाज अर्थ की शक्ति से जीवन के अंतिम लक्ष्य को प्राप्त कर सकेगा? कदाचित कभी नहीं।

आज का समाज स्वयं को जाने बिना दूसरों को पलभर में जानकर अपनी सुविधा के लिए उनसे परिवर्तन की अपेक्षा करते है, परंतु उन्हें यह भान कैसे हो कि उच्च आदर्शों से युक्त परिवर्तन के लिए

पहला कदम स्वयं को उठाना होगा । लोगों को देखने व समझने का नज़रिया सर्वप्रथम स्वयं से बदलना होगा ।

कबीर जी ने सत्य ही कहा

है-"माला फेरत जुग भया..

फिरा न मन का फेर..

कर का मनवा डार दे..

मन का मनका फेर।"7

अब मैं विराम की ओर बढ़ रही हूं । साथ ही आप सभी पाठकों को एक कार्य सौंप रही हूं । विचार अवश्य कीजिएगा !

क्या निर्धन वास्तव में ग़रीब हैं..?

संदर्भ ग्रंथ सूची

1.भारतीय अर्थव्यवस्था, लक्ष्मी नारायण अग्रवाल, प्रकाशन - नवरंग ऑफसेट प्रिंटर्स , आगरा -282002

पृष्ठ संख्या - 349

2. प्रेमचंद साहित्य; गोदान, मुंशी प्रेमचंद, प्रकाशन - डायमंड पॉकेट बुक्स (प्रा.) लि. नई दिल्ली -110020 , संस्करण - 2006

3. प्रेमचंद साहित्य; गोदान, मुंशी प्रेमचंद, प्रकाशन - डायमंड पॉकेट बुक्स (प्रा.) लि. नई दिल्ली -110020 , संस्करण - 2006

4. संसद से सड़क तक(मोचीराम), प्रकाशन - राजमहल प्रकाशन , संस्करण - 2013, पृष्ठ संख्या -09

5.सन्नाटे का छंद, अशोक वाजपेयी, प्रकाशन - वाग्देवी प्रकाशन, संस्करण - 1997, पृष्ठ संख्या - 144

6.नागार्जुन रचना संचयन, राजेश जोशी, प्रकाशन - साहित्य अकादमी, संस्करण -2017, पृष्ठ संख्या - 175

7.कबीर के दोहे, स्वामी आनंद कुलश्रेष्ठ, प्रकाशन - डायमंड पॉकेट बुक्स(प्रा.) लि., नई दिल्ली -110020, संस्करण - 2010